

दलित समुदाय का भविष्य: चुनौतियाँ और अवसर

प्रोफेसर सुषमा गोड़ियाल

हिन्दी विभाग

बरेली कॉलेज बरेली

प्रस्तावना

यह समाज और सरकार हमारे लिए और क्या कर सकती है; गली/सड़क पर झाड़ू लगाने का डंडा उसने बड़ा कर दिया है, मल को रगड़ने-झाड़ने के लिए एल्यूमिनियम का टुकड़ा अब हमारे हाथ में है, मैला ढोने के लिए 'टोकरी' की जगह अब हमें ट्रॉली मिल गई है, जिस पर पहिए लगा दिए गए हैं; हमें 'वाल्मिकी' से 'ऊँची जात' का तो बना नहीं सकती ! (दौलत सिंह, वार्ड पार्षद, हजूर दरवाजा, अलवर शहर से अनौपचारिक बातचीत के क्रम में) वक्तव्य केवल इस समुदाय के भाव को नहीं दिखाता वरन् किसी भी लोकतांत्रिक, समाज के उस चेहरे को दिखाता है, जो मानवीय तथा संवेदनशील होने का दावा करता है, साथ ही यह प्रतिक्रिया इस समाज के आधुनिक तथा बेहतर होने के दावे पर भी सवालिया निशान लगता है। 21वीं सदी का समाज, अत्याधुनिक समाज की परिभाषा पा चुका है पर इसके बावजूद, इस समाज में कुछ ऐसी (गैर-बराबरी, अस्पृश्यता, असंवर्धनशीलता, अमानवीयता, शोषण आदि) विसंगतियाँ विद्यमान हैं। जो समाज पर नकारात्मक प्रभाव लगातार डालते हैं।

झा और झींगरन (2002 96) पाते हैं कि "दलित बच्चे अनावश्यक रूप से शारीरिक एवं मानसिक यातना झेलते हैं। शिक्षक दलित बच्चों में या उनकी परिस्थितियों में सकारात्मक बदलाव को लेकर कोई खास रुचि नहीं दिखाते हैं, उनके अनुसार 'दलित' अकर्मण्य हैं।"

नस्ल या जाति या वर्ग आधारित भेदभाव समूची मानव सभ्यता का सर्वव्यापी किंतु दुःखद पक्ष है, जो विश्व के सभी भागों में विभिन्न प्रकारों एवं स्वरूपों में विद्यमान है। जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत सामाजिक गतिशीलता एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। भारत में, या अस्पृश्य अछूतों के वर्ग लिए 'दलित' एक नया नामकरण है जो कि सदियों से इस समाज पर हो रहे, आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में अमानवीय अत्याचारों को प्रतिबिम्बित करने के लिए पर्याप्त क्षमता रखता है। जन्म आधारित भेदभाव, मानव जाति के एक बड़े हिस्से पर हिंसात्मक प्रभाव डालता है जो प्रायः नागरिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं सामाजिक अधिकारों को तय करता है। जन्म से निर्धारित सामाजिक हैसियत में दक्षता, योग्यता और उपलब्धि के कारण परिवर्तन आता है। तथाकथित 'उच्च वर्ण' तथा आज की संवैधानिक शब्दावली में वर्णित अनुसूचित जातियों / जनजातियों की सामाजिक स्थिति प्रायः कठोरता के साथ जन्म से ही निर्धारित होती थी। क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण की स्थिति में परिवर्तन भी होता रहता था। ऐतिहासिक दृष्टान्तों, अध्ययनों से यह बात स्पष्ट होती है कि अपनी क्षमता और शक्ति के आधार पर अनेक जनजातियों, वैश्य तथा क्षत्रियों ने सामाजिक हैसियत में बदलाव किया। अभिप्राय यह है कि जाति व्यवस्था जड़ या बेजान नहीं है।

अम्बेडकर (राजकिशोर जाति का जहर) के अनुसार जाति भेद वस्तुतः श्रम का नहीं, श्रमिकों का विभाजन है। यही कारण है कि यहाँ नीचे गिराई गई जाति का मनुष्य ऊपरवाली जाति का का पेशा नहीं कर सकता। यहाँ 'भंगी' हलवाई का काम नहीं कर सकता, परचूनी नहीं कर सकता, चाय और पान की दुकान नहीं खोल सकता, पुरोहित नहीं बन सकता। ऐसा कोई सामाजिक कार्य नहीं जिसमें भंगी से ब्राह्मण तक समान भाव से लग सकें। वस्तुतः अम्बेडकर का श्रमिक विभाजन का यह विचार समाज में व्याप्त, एक विसंगति का ही विस्तार है, जिसे हम रोज मर्ग के जीवन में व्यवहृत होता देखते हैं। इसकी पृष्ठभूमि में यदि सूक्ष्म दृष्टिपात किया जाए तो यह विभाजन अपने मौलिक एवं वास्तविक स्वरूप में 'श्रम' का नहीं बल्कि व्यक्तियों का विभाजन है जिसका आधार बहुत हद तक सामाजिक-धार्मिक है तथा अपने अंतिम विश्लेषण में 'शोषक एवं शोषित' की चारित्रिक विशेषताओं का स्पष्टीकरण बनता है।

महात्मा गाँधी (प्रभु: 1964) 'हरिजन' की विपन्नता का कारण समाज द्वारा निर्मित अन्यायपूर्ण सामाजिक संरचना में पाते हैं। शोषक तथा शोषित दोनों ही वर्गों का व्यक्तित्व दो भागों में बँटा हुआ है। जिसमें कुछ हद तक मुख्य विभाजक 'ज्ञान' तथा 'तर्क' बनते हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने 18 अक्टूबर 1925 में मुम्बई की एक दलित सभा में दिये गए अपने वक्तव्य में इस बात को जोरदार तरीके से उठाया.. मैं आपको सलाह देता हूँ कि जो थोड़ी बहुत राजनीतिक शक्ति आपके हाथों में आ रही है आप उसका लाभ उठाएँ, यदि आप ऐसा नहीं करते तो आपके दुःखों का अंत नहीं हो पाएगा और दासता जिसके विरुद्ध आप संघर्ष कर रहे हैं, आपको पुनः दबा सकती है। अतः आवश्यकता 'दलित' शब्द को समझने की है न कि उसे पारिभाषित करने की। लोकप्रिय और अकादमिक दोनों अर्थों में 'दलित' पद हरिजन, अछूत, दमित, अनुसूचित जाति और अन्य अप्रचलित व्याख्यात्मक पद के रूप में क्रियाशील रहा है। यद्यपि 'दलित' अपने सामाजिक-राजनैतिक तथा संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में एक सुस्पष्ट परिभाषित 'श्रेणीयन' की अधिकृत स्वीकार्यता पा चुका है तथापि इस समुदाय को लगातार हाशिए पर धकेलने से बचाने के उपक्रम में कोई महत्वपूर्ण एवं सार्थक परिवर्तन अपेक्षाकृत आनुपातिक रूप से परिलक्षित नहीं हो पा रहा है। आधुनिकता के इस आइने में 'दलित' पीछे छूटता नजर आता है।

रामशरण जोशी (1996) ने अपनी पुस्तक 'आदिवासी समाज और शिक्षा' में विस्थापित आदिवासियों की समस्याओं को स्वर देने का प्रयास किया है। ये आदिवासी वे हैं जिन्हें औद्योगिकीकरण ने भूमि से विस्थापित कर भूमिहीन श्रमिक, सर्वहारा, प्रवासी बना दिया है। विस्थापन के कारण, आदिवासियों में बढ़ती अपराध प्रवृत्ति समस्या को गहरा देती है। जोशी अपने अध्ययन में पाते हैं कि अपरंपरागत तरीकों से दी जाने वाली 'शिक्षा' आदिवासियों की समस्याओं को हल कर सकती है साथ ही इनकी प्रस्थिति को भी सुधार सकती है। जोशी का यह विचार एक हद तक पॉलो फेयरे के उत्पीड़ितों के शिक्षा शास्त्रा तथा उसके प्रमुख औजार समीक्षाई चेतना का ही अग्रसरण है। दूबे और माथुर (1972) इस बात को प्रमुख रूप से इंगित करते हैं कि अनुसूचित जातियों को मिलने वाली सरकारी सुविधाएं या उनका वितरण प्रायः असमान ही है। मसला केवल सुविधाएं प्राप्त करने का नहीं है, तथ्य यह है कि उन सुविधाओं तक उनकी पहुंच कितनी है। अतीत पर दृष्टि डाले तो पाते हैं कि 1962 में मैसूर के पूर्व-विश्व विद्यालयी पाठ्यक्रम में नामांकित 40,000 बच्चों में से 961 छात्रा/छात्र अनुसूचित जाति से थे।

शुक्ला (1969) का मत है कि जब तक हैसियत को भूमि स्वामित्व, आय इत्यादि के आधार पर मापा जाएगा, तब तक न तो असानी से शिक्षा का व्यापक प्रसार हो पाएगा और न ही यह परिवर्तन का एक प्रभावी साधन बनेगी। अनुसूचित जातियों की प्रगति, विकास आदि को लेकर हुए विभिन्न अध्ययनों के सर्वेक्षण से यह बात

स्पष्ट होती है कि "इस समुदाय की उन्नति तथा विकास को तुलनात्मक रूप से संतोषजनक नहीं माना जा सकता" भारत सरकार के अधिनियम 1935, में पहली बार तथाकथित निम्न जातियों को 'अस्पृश्य' श्रेणी से बाहर निकलने का आधिकारिक प्रयास करते हुए इन्हें अनुसूचित जातियों की संज्ञा दी गई।

सरकार के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के तहत संवैधानिक अनुच्छेद-46 में स्पष्ट कहा गया है कि राज्य जिसमें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृत्ति हो। संविधान में विशेष सुरक्षा देने के पीछे, निम्न तथा पिछड़े वर्गों को ऊपर उठाना उद्देश्य था। आज भी दलित गांव या मुख्य आबादी से बाहर रह रहे हैं। सवर्णों के साथ बैठकर चाय पीना, एक साथ काम करना, साथ रहना, आदि ऊपरी तौर पर आया बदलाव है असल बदलाव 'मानसिकता' का है जो एक दलित को 'दलित' होने का हर पल अहसास कराती है। देश के शीर्षसन पर 'दलित' को बैठा देने मात्रा से ही सम्पूर्ण दलितों की मुख्यधारा में भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो जाती है। आजादी के बाद तीव्रता से इन जातियों के विकास के लिए संवैधानिक प्रावधान किए गए।

नई शिक्षा नीति (1986) में कहा गया है 'समानता के उद्देश्य को साकार बनाने के लिए सभी को शिक्षा का समान अवसर उपलब्ध करवाना ही पर्याप्त नहीं होगा, ऐसी व्यवस्था होना भी जरूरी है जिसमें सभी को शिक्षा में सफलता प्राप्त करने के समान अवसर मिले।... वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था का उद्देश्य है कि सामाजिक माहौल और जन्म के संयोग से उत्पन्न पूर्वाग्रह और कुंठाएं दूर हों। भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत संस्करण ने शैक्षिक अवसरों की उपलब्धता को अपने ही ढंग से प्रभावित किया है। ब्रिटिश काल में 'अधोमुखी निस्पंदन के सिद्धान्त' ने अभिजात वर्ग को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित करने पर जोर दिया तथा जनता की शिक्षा की उपेक्षा की। परिणामतः गरीब व निचले वर्ग शिक्षा से वंचित रहे। और इस प्रकार शिक्षा को उच्च जातियों का विशेषाधिकार ठहराने वाली परंपरागत जाति, प्रथा और अभिजात वर्ग को शिक्षा देने की ब्रिटिश नीति ने एक दूसरे को बल पहुँचाते हुए भारत में एक अत्यधिक असमान शिक्षा व्यवस्था को जन्म दिया। और इसके परिणाम स्वरूप ऐसी अनेक अनुसूचित जातियाँ हैं जिनमें साक्षरता दर शून्य हैं

हिंदू समाज में जाति एवं वर्ण व्यवस्था

दलित वर्ग का संबंध हिंदू जाति व्यवस्था से है अतः इस व्यवस्था के कुछ पक्षों को समझना आवश्यक है। 'दलित' हिंदू समाज के पदानुक्रम में निचले स्तर पर मानी जाने वाली कुछ जातियों का समूह है। दलित जातियों का हिंदू वर्ण व्यवस्था से घनिष्ठ सम्बन्ध है। हिंदू वर्ण व्यवस्था के उदय तथा शूद्रों की उत्पत्ति के लिए कई पौराणिक कथाएँ एवं मिथकीय व्याख्याएँ उपलब्ध हैं। एक पौराणिक मान्यता में गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए चारों वर्णों की उत्पत्ति को कर्म से जोड़कर बताया है। श्रीकृष्ण ने कहा है कि हे अर्जुन 'मैंने ब्राह्मण (मुख) क्षत्रिय (भुजा) वैश्य (उदर) शूद्र (पैर) से उत्पन्न किये हैं।' आदिकाल में वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत जो किसी भी प्रकार से चार वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ण में नहीं आते थे उन्हें पाँचवें और अन्तिम वर्ण 'अन्त्यज' कहा जाता था क्योंकि ये समाज के निम्न स्तर के व्यवसाय करते थे। इसलिए इनका स्पर्श-करना पाप माना जाता था। इन पर समाज ने सबसे अधिक प्रतिबन्ध लगा दिए थे। इनकी स्थिति सभी प्रकार से दयनीय थी इसलिए ऐसी जातियों को दलित जाति से सम्बोधित किया जाता था। सरकारी रिकार्डों में इन्हें इसी नाम से सम्बोधित किया जाता था। इनको प्रथम चार वर्णों से अलग और अपवित्र माना जाता था। धर्मशास्त्र काल में चौथे वर्ण शूद्र को भी इनके साथ जोड़ दिया गया। जब जाति की सदस्यता जन्म के द्वारा निश्चित होने लगी तब वर्ण संकर भी इसमें सम्मिलित किए जाने लगे। दूसरी और ऐसे दर्जनों लेखक हैं जो अछूतों को अनार्य, दस्यु, द्रविड, शक या हूणों से जोड़ते हैं, और आर्यों के प्रतिद्वन्दी बताते हैं। इस प्रक्रिया में एक मान्यता यह उभर

रही है कि आर्यों के आक्रमण के बाद जो दास बना लिए गए, वे शूद्र हैं और जो जंगलों में भाग गए वे आदिवासी हैं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'शूद्रों की खोज' में यह स्पष्ट किया है कि शूद्र अनार्य नहीं हैं, प्राचीनकाल में कई तेजस्वी और बलशाली राजा शूद्र थे।

भारतीय हिन्दू समाज में वर्ण व्यवस्था एवं जाति मूलधार रहे हैं। हिन्दू धर्मशास्त्रियों ने समाज को चार वर्णों में बाट कर विषमतापूर्ण समाज का निर्माण किया है, जो कालांतर में अनेकानेक जातियों में बंट गया। इससे मानव-मानव के बीच भेदभाव उत्पन्न हो गया तथा निम्न समझे जाने वाले शूद्रों का जीवन कठिन हो गया है। इस विषमतापूर्ण जाति-व्यवस्था के बारे में बताते हुए डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा है कि "हिन्दुस्तान देश केवल विषमता का आश्रय स्थल है, हिन्दू समाज उसकी एक मीनार है और प्रत्येक जाति उसकी एक मंजिल है लेकिन ध्यान रखने की बात यह है कि इस मीनार में सीढ़ी नहीं लगी है। एक मंजिल में जो जन्मे उसी मंजिल में वह मरे, नीचे की मंजिल में जन्मा व्यक्ति चाहे कितना भी लायक क्यों न हो उसे ऊपर वाली मंजिल में प्रवेश नहीं और ऊपर की मंजिल में जन्मा व्यक्ति चाहे वह कितना ही अयोग्य क्यों न हो उसे भी नीचे की मंजिल में ढकेलने का साहस किसी में नहीं है।"

भारतीय दलित समाज में चेतना

'दलित चेतना' से अभिप्राय उस विचार से है जिसके द्वारा अस्पृश्यता, अत्याचार एवं शोषण से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो तथा मानव-मानव के बीच भेदभाव उंच नीच की दीवार को हटा कर पीड़ित मानवता के स्वाभिमान को जगाया जाए। सभी रूढ़ियों ब्रह्माचारों, भाग्यवाद, अंधविश्वास आदि से मुक्ति के लिए संघर्ष, दलित चेतना के प्रमुख आयाम हैं, जिससे सदियों से अन्याय और अत्याचार से पीड़ित मानवता को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ा जा सके। भारतीय समाज में सदियों से शोषण की परम्परा के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर मुखरित हुआ है जिसे समय-समय पर धर्म व समाज सुधारकों ने गति दी है। डॉ भीमराव अम्बेडकर मार्क्सवादी विचारधारा के बहुत समीप थे। वर्ग संघर्ष का प्रतिरूप उनके मन मस्तिष्क में था (गैल आम्बेट, 1996)। दलित चेतना का संदर्भ वर्ग चेतना के साथ जोड़ा जा सकता है।

दलितों को सामाजिक पहचान दिलाने या उन्हें मानवीय धरातल पर स्थापित करने की चेतना सम्बन्धी कोई कार्य अंग्रेजों ने नहीं किया। ब्रिटिश शासनकाल में अंग्रेजों ने शूद्र तथा अस्पृश्य वर्ण के स्तर की जातियों को हिन्दू जाति व्यवस्था से अलग करके इसाई धर्म में परिवर्तित करने के कई प्रयास किये। महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार की राजनीतिक चाल को समझ कर इसके विरोध में आमरण अनशन किया तथा ब्रिटिश सरकार को ऐसा करने से रोका। महात्मा गांधी अस्पृश्य जाति को हिन्दू समाज में विभिन्न नियोग्यताओं से मुक्त करवाने तथा अन्य जातियों की तरह समान विशेषाधिकार दिलवाने के लिए अनेक प्रयास किये जिसमें सबसे महत्वपूर्ण कार्य इन्हें भगवान का जन या हरि का जन अर्थात् 'हरिजन' नाम देना था। तब से आज तक इनका नाम 'हरिजन' चल रहा है।

भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान महात्मा गांधी, डॉ भीमराव अम्बेडकर ने अछूतों के उद्धार का बीड़ा उठाया तथा हिन्दू समाज के एकीकरण में जी जान से जुट गये। महात्मा गांधी ने स्वयं अछूत बस्तियों में रहकर अछूतों हेतु कई गतिविधियां आरम्भ कीं। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अछूतों को अपने अधिकारों के प्रति लड़ाई लड़ने हेतु "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" का गठन किया जिसका उद्देश्य अछूतों में जागृति लाना था। अम्बेडकर ने दलित वर्गों की पुलिस तथा भारतीय सेना में भर्ती के लिए संघर्ष किया। दलित जातियों के लिए एक अलग निर्वाचक मण्डल बनाने तथा संघीय व प्रान्तीय विद्यार्थियों में दलित प्रतिनिधियों को अलग से चुनकर भेजे जाने के लिए संघर्ष किया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का एक ही नारा था कि "शिक्षित बनो, संगठित रहो तथा

आन्दोलन करो। डॉ. भीमराव अम्बेडकर दलितों के शोषण एवं अन्याय को समाप्त करने के लिए हिन्दू समाज की वर्ण व्यवस्था एवं जाति प्रथा का उन्मूलन आवश्यक मानते थे क्योंकि अछूत प्रथा की जड़ जाति प्रथा में ही थी एक तरफ देश जहां अंग्रेजों की गुलामी एवं दासता के विरुद्ध संघर्ष कर रहा था वहीं डॉ. भीमराव अम्बेडकर हिन्दू समाज द्वारा दलितों पर थोपी गई सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक नियोग्यताओं एवं शोषण के खिलाफ संघर्ष किया। वे दलितों को भी हिन्दुओं के समान ही समाज में एक सम्मानजनक स्थान दिलाना चाहते थे। जहाँ महात्मा गांधी की विचारधारा ने दलितों की ओर देखने की नई दृष्टि सवर्णों को दी, वहीं अम्बेडकरवाद ने दलितों के स्वाभिमान से उठ खड़े होने की शक्ति दी है।

भारतीय दलित समाज की प्रमुख समस्याएं

यदि हम दलित जातियों का इतिहास देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी प्रमुख समस्याएं विविध प्रकार के शोषण, प्रतिबन्ध एवं निर्योग्यताएँ आदि से जुड़ी हुई हैं। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था ने दलित समाज पर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक निर्योग्यताएं लागू की तथा उन्हें अधिकारों से वंचित कर दिया जबकि समाज के द्विज वर्णों को विशेषाधिकार प्राप्त थे। यदि हम दलितों की धार्मिक समस्याओं को ले तो ये लोग मन्दिरों, देवालयों में प्रवेश नहीं कर सकते थे, प्रार्थना अर्चना करना तो दूर, ये लोग भजन आदि तक को सुन नहीं सकते थे। धर्म ग्रन्थ पढ़ना तथा सुनना, यज्ञोपवीत धारण करना निषिद्ध था। दलित लोग जन्म, विवाह एवं मृत्यु सम्बन्धी संस्कार ब्राह्मण पुरोहित के द्वारा सम्पन्न करवाने में असमर्थ था। इनकी बस्तियां ग्राम एवं नगर के बाहर स्थित थीं। इन लोगों को स्वच्छ तथा साफ-सुथरे स्थलों पर अपनी झोपड़िया बनाकर रहने का अधिकार नहीं था। दलित जातियों के लोग सार्वजनिक स्थानों तथा सुविधाओं का उपयोग नहीं कर सकते थे। ये लोग स्वर्ण जातियों के कुओं से पानी नहीं भर सकते थे, पक्के मकान नहीं बनवा सकते थे। इनको शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। मनोरंजन के लिए सार्वजनिक मेलों, चौपालों, रामलीला, खेलकूद प्रतियोगिता, मल्ल युद्ध, हाट बाजारों, कठपुतली का तमाशा इत्यादि को देखना, उनमें शामिल होना, भाग लेना आदि का अधिकार नहीं था। इन लोगों को झगड़े, चोरी, बेईमानी, दंगे फसाद में गवाही देने का अधिकार नहीं था। ये लोग पंच और सरपंच नहीं बन सकते थे। इनको मतदान करने का अधिकार स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व किसी भी काल में नहीं था। सामाजिक और राजनीतिक संगठनों में इनको किसी भी सार्वजनिक या प्रशासनिक पद पर नियुक्त नहीं किया जाता था। इन्हें किसी भी राजनीतिक क्रियाकलाप तथा कार्यों में भाग लेना निषिद्ध था। साफ-सफाई करने, मलमूत्र उठाने, मरे हुए पशुओं को ढोने, चमड़े का उत्पाद बनाने से जो पारिश्रमिक मिल जाता था उसी से जीवन व्यतीत करना होता था।

लित समाज की समस्याओं के सुधार हेतु संत कबीर, रामानुजाचार्य, जगदगुरू शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु, नानक, रामकृष्ण परमहंस, महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, केशवचन्द्र सेन, राजा राममोहनराय, ज्योतिबा फूले ने अपने अपने समय में प्रयास किये। आर्य समाज सत्यशोधक समाज, अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ, अखिल भारतीय दलित वर्ग फैडरेशन, हरिजन सेवक संघ, सर्वेण्ट्स आफ इण्डियन सोसायटी, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं ने दलित जातियों के सामाजिक कल्याण तथा विकास के लिए समय-समय पर अनेक कार्य किये गये। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के संविधान द्वारा इन दलित जातियों, पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों को अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, शैक्षणिक अधिकार प्रदान किये गये। सैद्धान्तिक रूप से कानून के रूप में अनेक सुविधाएं तथा अधिकार प्राप्त हो गये लेकिन व्यवहार में अभी तक कितना मिल पाया है और कितना मिलना शेष है, इस पर विवाद एवं एकमतता का अभाव है। फिर भी अनेक क्षेत्रों में अभी भी दलित जातियां सवर्णों के डर के कारण अपनी पूर्व स्थिति में ही जीवन व्यतीत कर रही हैं। सवर्ण और अवर्ण के झगड़े, मारपीट, आगजनी, हत्याएं, लूटपाट आदि होती रहती

है। अखबारों एवं पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से आये दिन ऐसी घटनाएं सामने आती हैं, जैसे-दलित दूल्हे को घोड़ी से उतारना, दलितों की निर्मम हत्या जैसी घटनाएं सच की तस्वीर दिखाती है। सरकार द्वारा दी गई आर्थिक सुविधाएं इन तक पूरी नहीं पहुंच पाती हैं।

चुनौतियाँ और अवसर

दलित समुदाय का समाज में सशक्तिकरण अनेक चुनौतियों और अवसरों के बीच संतुलन स्थापित करने पर निर्भर करता है। ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ में यह समुदाय लंबे समय तक भेदभाव और उत्पीड़न का शिकार रहा है।

चुनौतियाँ

- दलित समुदाय का सबसे बड़ा सामाजिक चुनौती अभी भी जातिगत भेदभाव और छुआछूत की प्रथाएँ हैं। ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में सामाजिक बहिष्कार, शादी-विवाह में असमानता, और मंदिर, जलाशय या सार्वजनिक स्थानों में पहुँच पर रोक जैसी घटनाएँ अभी भी प्रचलित हैं। इस प्रकार का भेदभाव न केवल सामाजिक एकता को बाधित करता है, बल्कि दलितों में आत्म-सम्मान और सामाजिक सहभागिता की भावना को भी कमजोर करता है।
- दलित बच्चों की शिक्षा में नामांकन दर में सुधार हुआ है, लेकिन गुणवत्ता और उच्च शिक्षा में पहुँच अभी भी सीमित है। शिक्षण संसाधनों की कमी, शिक्षक भेदभाव, और परिवारिक गरीबी के कारण विद्यालय छोड़ने की दर अधिक है। स्वास्थ्य क्षेत्र में भी असमानता स्पष्ट है। पोषण की कमी, प्राथमिक स्वास्थ्य सुविधाओं की अभाव, और सामाजिक कलंक के कारण दलित समुदाय में रोग और मृत्यु दर अधिक है।
- दलित समुदाय के लिए आर्थिक स्वतंत्रता हासिल करना भी चुनौतीपूर्ण है। अधिकांश दलित परिवार कृषि, मजदूरी और असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं, जहाँ आय अस्थिर और असुरक्षित होती है। बेरोजगारी, काम के अवसरों की कमी और न्यूनतम मजदूरी का पालन न होना दलित युवाओं के लिए सामाजिक असुरक्षा और गरीबी की समस्या बढ़ाता है।
- राजनीतिक भागीदारी के बावजूद दलित समुदाय के निर्णयों पर प्रभाव सीमित रहता है। जातिगत राजनीति और दलों के आंतरिक संघर्षों के कारण दलितों के प्रतिनिधि अक्सर वास्तविक नीतिगत निर्णयों में प्रभाव नहीं डाल पाते।

अवसर

- भारतीय संविधान और सरकारी नीतियों ने दलितों के सशक्तिकरण के लिए अनेक अवसर प्रदान किए हैं। शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए आरक्षण प्रणाली दलित समुदाय के सामाजिक और आर्थिक उत्थान में मदद करती है। सरकारी योजनाएँ जैसे महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना स्किल इंडिया मिशन उनके लिए स्थायी रोजगार और आत्मनिर्भरता के रास्ते खोलती हैं।
- शिक्षा और कौशल विकास दलित समाज को समावेशी विकास की दिशा में आगे बढ़ने का अवसर प्रदान करता है। उच्च शिक्षा में प्रवेश, तकनीकी प्रशिक्षण, और डिजिटल शिक्षा के माध्यम से युवा दलित बेहतर रोजगार और उद्यमिता के अवसर प्राप्त कर सकते हैं।

- दलित युवाओं के लिए स्वरोजगार और उद्यमिता आर्थिक स्वतंत्रता का अवसर प्रदान करते हैं। स्वरोजगार योजनाएँ, स्टार्टअप सहायता, और वित्तीय साक्षरता उनके आर्थिक सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।
- आज के डिजिटल युग में सोशल मीडिया दलित समुदाय के लिए सशक्तिकरण और जागरूकता का एक नया मंच है। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर दलित अधिकारों, सामाजिक भेदभाव, और शिक्षा एवं रोजगार की अवसरों के बारे में जानकारी साझा की जा सकती है। इसके माध्यम से समुदाय अपनी आवाज़ को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पहुँचा सकता है और सामाजिक न्याय की दिशा में आंदोलन चला सकता है।

यह विस्तार दलित समुदाय की वर्तमान चुनौतियों को समझने और भविष्य के अवसरों का उपयोग करने की दिशा में स्पष्ट रूप से प्रकाश डालता है।

उपसंहार

दलित समुदाय का भविष्य सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक रूप से अनेक अवसरों और चुनौतियों से भरा है। सशक्तिकरण केवल कानूनी और नीतिगत उपायों तक सीमित नहीं है, बल्कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, और सामाजिक चेतना के माध्यम से संभव है। समाज में जातिवाद और भेदभाव जैसी पुरानी प्रथाओं को समाप्त करने के लिए शिक्षा और सामाजिक जागरूकता आवश्यक है। सरकारी नीतियों के साथ-साथ सामुदायिक संगठनों और गैर-सरकारी संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी भविष्य में दलित समाज के लिए स्थायी विकास सुनिश्चित कर सकती है। इस प्रकार, दलित समुदाय का सशक्तिकरण भारतीय समाज के समग्र विकास और सामाजिक न्याय की दिशा में निर्णायक भूमिका निभा सकता है। किसी भी सामाजिक-सांस्कृतिक राजनीतिक आयामों में विस्तारित हो रहा समाज शिक्षा से उसमें संचरण होने की उम्मीद करता है। शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के आपसी संबंधों की प्रकृति को समझने की दिशा में इस अध्ययन को दलित समुदाय पर केंद्रित किया गया है। इस अध्ययन में शिक्षा के मायने को एक विशेष संस्थायी अर्थ में लिया गया है। अर्थात् केवल स्कूल के जरिए दी जाने वाली शिक्षा को ही लिया गया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

नीलसन, जे.पी. (1972). 'द इम्पैक्ट ऑफ एजुकेशन आन द स्ट्रेटीफिकेशन ऑफ इंडिया,' सोशल रिसर्च (ज.), 15(2), 51-52

जोशी, आर.एस., (1996): 'आदिवासी समाज और शिक्षा (लिव्यांतरण अरूण प्रकाश), ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली
दुबे एस.एन. और उषा माथुर (1972). 'वेलफेयर प्रोग्राम फार एस. सीज़: कंटेंट एंड एडमिनिस्ट्रेशन' इ.पी.डब्ल्यू, वा. टप्. नं. 4, जनवरी 22, 165-76

वानखेड़े सी.जी., (1999), 'सोशल माबिलिटी एंड सेड्यूल कास्ट: रिसिडिंग हॉरिजन' रावत पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 27-28

अग्रवाल, यश (1994). अनुसूचित जातियों में साक्षरता की प्रवृत्तियाँ, परिप्रेक्ष्य वर्ष 1, अंक 2.